International Journal of Scientific Research in Science and Technology

© 2018 IJSRST | Volume 4 | Issue 7 | Print ISSN: 2395-6011 | Online ISSN: 2395-602X

बाल गंगाधर तिलक के राष्ट्रवाद संबंधी विचार

राजेश कुमार रौशन

शोधार्थी इतिहास विभाग, बी०आर०ए०बिहार विश्वविद्यालय, मुजफ्फरपुर

बाल गंगाधर तिलक की प्रसिद्धि लोकमान्य तिलक के रूप में हुई । वे आधुनिक भारत के महानतम कर्मयोगियों में से है । वैदिक तथा दार्शनिक शोध के रूप में चिरस्थाई रचनाओं के द्वारा उन्होंने भारत के साहित्यिक तथा सांस्कृतिक इतिहास में अपूर्व यश तथा कीर्ति प्राप्त कर ली थी । इनका भारत के राजनीतिक इतिहास में ही नहीं बल्कि इस देश के पुर्नजागरण के इतिहास में भी चिरस्थाई स्थान प्राप्त है । वे एक कट्टर राष्ट्रवादी थे । उनका राष्ट्रवाद स्वामी विवेकानंद की भाँति पुनरूत्थानवादी था । वे चाहते थे कि भारत एक शक्तिशाली राष्ट्र के रूप में संगठित हो, एक हो और एक प्रचण्ड, एकीकृत और केन्द्रीय शक्ति के रूप में एक ही धरा में बहे ।

उनके राष्ट्रवाद संबंधी विचारों को समझने के लिए पहले हमें राष्ट्र का अर्थ समझना होगा । शाब्दिक रूप में देखे तो राष्ट्र शब्द की उत्पत्ति लैटिन भाषा के शब्द 'नेशियों' (NATIO) से हुई है जिसका अर्थ है– 'उत्पन्न होना या जन्म लेना होता है।' अतः राष्ट्र शब्द का प्रयोग जातीय संदर्भ में किया जाता है । इसलिए व्युत्पत्ति की दृष्टि से राष्ट्र उन लोगों के समूह को बतलाता है, जो परस्पर रक्त संबंध से बँधे है अथवा एक ही नस्ल के है । लेकिन राष्ट्र की यह संकुचित परिभाषा है। एनसाइक्लोपीडिया ऑफ सोशल साइंसेज के अनुसार–'राष्ट्रवाद व्यापक अर्थ में उस प्रकृति का नाम है जो राष्ट्र के पृथक एवं स्वतंत्रा अस्तित्व को मूल्यों के व्यक्तिक्रम में सर्वोच्च स्थान प्रदान करती है।'[1] एनसाइक्लोपीडिया ब्रिटेनिका के अनुसार–'राष्ट्रवाद एक ऐसी मनःस्थिति का नाम है जिसमें व्यक्ति की सर्वोच्च आस्था, उसके राष्ट्र राज्य के प्रति अनुभव की जाती है।'[2] जे० एस० मिल के अनुसार–'मानव समाज का वह हिस्सा राष्ट्र कहा जा सकता है जिसमें कुछ लोग सामान्य सहानुभूति से बंधे हो तथा वह सहानुभूति उन्हे एक दूसरे के साथ सहयोग करने के लिए प्रेरित करती हो । साथ ही उनमें एक शासन के अंतर्गत रहने की आकांक्षा हो तथा वह शासन उनके या उनके प्रतिनिधियों द्वारा संचालित होता हो।[3]

गहनता से देखें तो राष्ट्रवाद सम्मान और समर्पण की भावना का दूसरा नाम है और इस भावना का मूल केन्द्रबिन्दु राष्ट्र है । यह वह आदर्श है जो मानवीय चेतना को एक संगठित समूह के प्रति कल्याण, समर्पण तथा आस्था की भावना से ओतप्रोत करता है । वास्तव में राष्ट्रवाद स्वयं दो विरोधी भावनाओं का मिश्रण है । पहला एकता और दूसरा पृथकता की भावना है । एकता का तात्पर्य है राष्ट्रीयता की भावना को सर्वोच्च महत्व प्रदान करना । परिवार की तुलना में राष्ट्र को महत्व और आवश्यकता पड़ने पर परिवार और समाज के हितों का उत्सर्ग करना । दूसरी ओर पृथकता का तात्पर्य है–'अपने राष्ट्र को विश्व के अन्य राष्ट्रों की तुलना में श्रेष्ट और सर्वोच्च मानना । अपने राष्ट्र के सम्मान और सुरक्षा के लिए स्वयं तक को समर्पित कर देना और राष्ट्रप्रेम को जीवन की अंतिम आस्था बिन्दू मानना ।

अन्य सामाजिक तथ्यों की तरह राष्ट्रवाद एक ऐतिहासिक तथ्य है।'[4] उनके अनुसार लोकजीवन के विकास क्रम में वस्तुनिष्ठ और भावनिष्ठ दोनों प्रकार के ऐतिहासिक तत्वों की परिपक्वता के पश्चात राष्ट्रवाद का उद्भव हुआ । जैसा ई० एच० कार ने लिखा है–'' सही अर्थो में राष्ट्रों का उदय मध्ययुगीन राज्य की

समाप्ति पर ही हुआ।''[5] व्यापक राष्ट्रीयता के आधार पर समाज राज्य और संस्कृति के उद्‌भव के पूर्व संसार के विभिन्न भागों का जनजीवन मोटे तौर पर इन स्थितियों से गुजरा' कबीलों की जिन्दगीं, दास प्रथा और सामंतवाद । सामाजिक आर्थिक और सांस्कृतिक विकास के दौर में राष्ट्रों का जन्म हुआ । इस प्रकार राष्ट्रवाद की जड़ें काफी गहरी होती है । यह लोगों की आत्मा से जुड़ा होता है । ई० एच0 कार के मतानुसार ''राष्ट्र का संबंध मनुष्यों के ऐसे समूह से है जो निम्न विशेषताएँ रखता है–[6]

1. एक सामान्य सरकार की भावना जो भले ही वर्तमान अथवा अतीत की वास्तविकता हो अथवा भविष्य की आकांक्षा हो ।
2. इसके सभी सदस्यों के बीच एक निश्चित प्रकार की आत्मीयतापूर्ण घनिष्टता हो ।
3. कम अथवा अधिक परिभाषित निश्चित भू–भाग हो ।
4. कुछ विशिष्ट विशेषताएँ जिसमें भाषा का विशेष स्थान है । यह एक राष्ट्र को दूसरे राष्ट्र से अथवा अंर्तराष्ट्रीय समूहों से पृथक करती हो ।
5. व्यक्तिगत सदस्यों के बीच कुछ सामान्य हित हो ।
6. सदस्यों के बीच राष्ट्र की रूपरेखा के संबंध में कुछ सामान्य इच्छा आवश्य होनी चाहिए ।

इस संबंध में एक बात विशेष रूप से ध्यान देने के योग्य है कि राष्ट्र और राज्य में कुछ अंतर भी होते है । राज्य के लिए जनसंख्या, भूमि, सरकार, संप्रभुता इत्यादि चार आवश्यक तत्व है । राष्ट्र सरकार और संप्रभुता के अभाव में जीवित रह सकता है । राष्ट्र एक आध्यात्मिक और एक मनोवैज्ञानिक संगठन है । राष्ट्र न तो भाषायी और न जैविक संगठन है । यह तो एक आध्यात्मिक इकाई है जबकि राज्य एक भौतिक एवं राजनीतिक संगठन है । राज्य के चार मूल तत्व माने गये है । जनसंख्या, भूभाग, सरकार और संप्रभुता और उनमें कोई परिवर्तन नहीं होता । जबकि राष्ट्र के तत्वों में परिर्वतन होता रहता है । अलग–अलग काल, समय व स्थान पर तत्वों की भिन्नता राष्ट्र का निर्माण करती है । पहले धर्म और नस्ल राष्ट्रीय एकता के महत्वपूर्ण आधर माने जाते थे । आज सामान्य चेतना को राष्ट्रीय एकता का आधार माना जाता है । भाषा, धर्म, जाति और अन्य विभिन्नताएँ होते हुए भी उनमें राष्ट्रीय राष्ट्रवादी तत्व विद्यमान होता है । राज्य एक सार्वभौम संस्था है । अपनी सर्वोच्च शक्ति के आधार पर राज्य अपनी आज्ञाओं का अनुपालन करा सकता है तथा अवज्ञा करनेवालों को दंडित कर सकता है । दूसरी ओर राष्ट्र के पास केवल नैतिक शक्ति होती है । वह सदस्यों से अनुभव कर सकता है, उन्हे आदेश नहीं दे सकता, दंडित नहीं कर सकता ।

यदि किसी समुदाय के सदस्य अपने आपको एक राष्ट्र मानते हो तो वे अपनी राष्ट्रीय भावना को सुदृढ़ करने के लिए राष्ट्रत्व के कुछ तत्वों का आविष्कार या निर्माण कर सकते है । वे राष्ट्रभाषा विकसित कर सकते है । राष्ट्रध्वज या कोई गौरवचिन्ह का प्रयोग कर सकते है । राष्ट्रीय इतिहास की गौरव गाथाओं को लोकप्रिय गीतों, चित्राकला और मूर्तिकला के माध्यम से राष्ट्र के सदस्यों को ह्रदयगंम करा सकते है । यदि कोई राष्ट्र साम्राज्यवाद का शिकार है तो ऐसा करके वह राष्ट्रीय आंदोलन भी चला सकता है ।

राष्ट्र निर्माण में सामान्य जाति, सामान्य धर्म, सामान्य भाषा एवं साहित्य, सामान्य परंपराएँ, सामान्य इतिहास एवं उचित अनुचित के सामान्य नियम होते है । सामूहिक चेतना तथा एकता की आवश्यकता होती है जिसको जागृत करने या रहने पर राष्ट्र बनता है ।

एस० सी० सिंघल के अनुसार–''राष्ट्रवाद आधुनिक संसार का एक नवीन धर्म है। यह धर्मानुभूति की भावना से अधिक गहन प्रभाव रखता है, क्योंकि मनुष्य के अचेतन मन में राष्ट्रवाद की प्रवृत्ति अपना स्थाई स्थान बना चुकी है।''[7] उन्हीं के शब्दों में कहा जाए तो–''जिन लोगों की नस्ल, भाषा साहित्य, आर्थिक हित

और राजनीतिक आदर्श एक समान होते है, उनमें राष्ट्रीय भावनाएँ उत्पन्न हो जाती है । राष्ट्रीय भावनाओं के कारण ही राष्ट्रवाद का उदय होता है । राष्ट्रवाद हमें अपनी मातृभूमि से प्रेम करना सिखाती है । राष्ट्रवादी अपने देश की भूमि, नदियों, पर्वतों, पशु–पक्षियों से असीम प्रेम करते है।''[8]

उनका मानना था कि ''हमारा राष्ट्र भारत हमेशा से एक महान राष्ट्र रहा है । यदि पृथ्वी पर ऐसा कोई देश है जिसे हम धन्यपुण्य भूमि कह सकते है ..... यदि कोई ऐसा देश है जहाँ मानवजाति की क्षमा, धैर्य, दया, शुद्धता आदि सहप्रवृतियों का सर्वाधिक विकास हुआ है और यदि ऐसा कोई देश है जहाँ आध्यात्मिकता तथा सर्वाधिक आत्मान्वेषण का सर्वाधिक विकास हुआ है, तो वह भूमि भारत ही है।''[9] हमारा पवित्र भारतवर्ष धर्म तथा दर्शन की पुण्यभूमि है, यही बड़े महात्माओं तथा ऋषियों की जन्मभूमि है । यही सन्यास तथा त्याग की भूमि है और यही केवल यही पर आदिकाल से लेकर आजतक मनुष्य के लिए जीवन के सर्वोच्च आदर्शो का द्वार खुला हुआ है।[10] यह देश धर्म, दर्शन, नीतिशास्त्र, मधुरता, कोमलता और प्रेम की मातृभूमि है । ये सभी भारत में अब भी विद्यमान है । मुझे दुनिया के संबंध में जो कुछ भी जानकारी है । उसके बल पर मैं दृढ़तापूर्वक यह कह सकता हूँ कि इन बातों में पृथ्वी के अन्य देशों की अपेक्षा भारत अब भी श्रेष्ठ है।[11] यह वही भारत है जो शताब्दियों के आघात, विदेशियों के असंख्य आक्रमण और सैकड़ों आचार व्यवहारों के हलचलों को भी झेलकर अक्षय बना हुआ है । आत्मा जैसे अनादि अनंत और अमृत स्वरूप है, वैसे ही हमारी भारतभूमि का जीवन है और हम इसी देश की संतान है।[12] जब यूनान का अस्तित्व नहीं था जब रोम भविष्य के अंधकारमय गर्भ में नीहित था, जब आधुनिक यूरोपवासियों के पुरखे घने जंगलों में छिपे रहते थे तथा अपने शरीर को नीले रंग से रंगा करते थे तब भी भारत क्रियाशील था । उससे भी पहले जिस समय का इतिहास में कोई लेखा नहीं है, जिस सुदूर धुंधले अतीत की ओर झाँकने का साहस परंपरा को भी नहीं होता तब से लेकर अबतक न जाने कितने ही भाव एक के बाद एक भारत से प्रसारित हुए है । परंतु उनका प्रत्येक शब्द आगे शांति और पीछे आशीर्वाद के साथ उच्चारित हुआ है। विवेकानंद के इस बात में वे यकीन रखते थे कि–'संसार का इतिहास पढ़कर देख लो जितने भी उच्च भाव है वे सब भारत में ही जन्मे है। चीरकाल से भारतवर्ष ही मानवसमाज के लिए भावों की खान रहा है । उसने नए भाव उत्पन्न कर संपूर्ण जगत में वितरित किए है । नवीनतम शोधों से यह ज्ञात होता है कि उत्तम नीतिशास्त्र से युक्त ऐसा कोई भी देश नहीं है जिसने उसका कुछ न कुछ अंश हमसे न लिया हो और आत्मा के अमरत्व का ज्ञान रखनेवाला कोई ऐसा धर्म नहीं है जिसने प्रत्यक्ष या परोक्ष रूप से वह हमसे न लिया हो।[13] यदि विभिन्न देशों की आपस में तुलना की जाए तो पता चलेगा कि सारा संसार सहिष्णु तथा निरिह हिन्दू का जितना ऋणी है उतना किसी अन्य जाति का नहीं।[14]

कहना न होगा कि उस समय भारत की स्थिति अत्यंत दुर्बल हो गई थी । ब्रिटिश शासकों की साम्राज्यवादी नीति के कारण भारत में अंगरेजों की राजनीतिक सत्ता कायम हो चुकी थी । राजनीतिक एकता की भावना दम तोड़ चुकी थी । भारत के विभिन्न राज्य आपस में संघर्ष कर रहे थे । आर्थिक क्षेत्र में ईस्ट इंडिया कंपनी ने भारत का शोषण करना प्रारंभ कर दिया था और दिन प्रतिदिन इसकी रफ्तार भी बढ़ती जा रही थी । 'सच कहा जाए तो उस हिंसा और लूट की कोई सीमा न थी जिसे भारत में ब्रिटिश शासन के नाम से जाना जाता है।'[15] व्यापार पर अंगरेजों ने एकाधिकार जमा लिया था और भारतीय व्यापार तथा उद्योग धंधे नष्ट हो चले थे । साहित्य और कला की प्रगति रूक गई थी । अव्यवस्था की इस स्थिति में भारत का नैतिक पतन हो रहा था । भारत के लोग ईसाई धर्म और अंगरेजी सभ्यता के चमक–दमक में पड़कर अपना धर्म खोते जा रहे थे । अतः भारत उत्तरोत्तर राजनीतिक दृष्टि से परालंबी आर्थिक दृष्टि से निर्धन तथा नैतिक और सांस्कृतिक दृष्टि से प्रभावहीन होता जा रहा था।

तिलक इसमें सुधार चाहते थे । वे यह मानते थे कि राष्ट्र व्यक्तियों से बनता है । इसलिए उनका अनुरोध था कि सब व्यक्तियों को पुरूषत्व, मानव गरिमा तथा सम्मान की भावना का विकास करना चाहिए ।

किन्तु इस व्यक्तिगत गुणों की पूर्ति अपने पड़ोसी के प्रति प्रेम की भावनात्मक भावना से होनी चाहिए । व्यक्ति को अपने अहम् और राष्ट्र की आत्मा के साथ सहयोग करना चाहिए । यह भारतीय दर्शन का आधरस्तम्भ था और इन आदर्शो को पुर्न–प्रतिष्ठित करने एवं सेवा और त्याग को भारतीय राष्ट्र के पुनरूद्धार का तात्विक आधार बनाना आवश्यक है। यहाँ स्पष्ट है कि व्यक्ति को समूह, समाज और राष्ट्र से अलग करके वैराग्य लेकर कल्याण की कामना नहीं की गई है । उनके चिंतन में कल्याण मानवमात्रा की सेवा है और क्योंकि राष्ट्र व्यक्तियों से बनता है और इसलिए राष्ट्र का उत्थान व्यक्ति का उत्थान और व्यक्ति का उत्थान राष्ट्र का उत्थान है । अगर एक सबल और संपन्न भारत के निर्माण में राष्ट्र का विकास करना है तो हमें सबसे पहले देश की जनता का उत्थान करना होगा, भारत को स्वतंत्र कराना होगा । इस दिशा में भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस देश की स्वतंत्रता के लिए प्रयास कर रहीं थी । लेकिन उनकी कार्यपद्धति पर तिलक का पूर्ण विश्वास न था । वे पहले भारत की जनता को जगाना चाहते थे और उनका मानना था कि फिर जनसाधारण अपना उद्धार स्वंय कर लेगें।

तिलक का राष्ट्रवाद हमें उनके साम्राज्यविरोधी, प्रजातंत्राविरोधी विचार देखने को मिलता है । 'उनका राष्ट्रवाद कुछ अंशों में पुनरूत्थानवादी था । वे राष्ट्र में आध्यात्मिक शक्ति और नैतिक उत्साह उत्पन्न करने के लिए वेदों तथा गीता के संदेश को जनता के समक्ष रखना चाहते थे । उनका विचार था कि प्राचीन भारतीय संस्कृति के कल्याणकारी और जीवनदायिनी परंपराओं की पुनःस्थापना करना अत्यंत आवश्यक है । उन्होंने कहा था कि सच्चा राष्ट्रवादी पुरानी नींव पर ही निर्माण करना चाहता है जो सुधार पुरातन के प्रति घोर असम्मान की भावना पर आधरित है उसे सच्चा राष्ट्रवादी रचनात्मक कार्य नहीं समझता । हम अपनी संस्थाओं को अंग्रेजियत के ढ़ाँचे में नहीं ढ़ालना चाहते, सामाजिक और राजनीतिक सुधार के नाम पर हम उनका अंर्तराष्ट्रीयकरण नहीं करना चाहते।'

खुले तौर पर उन्होंने ब्रिटिश साम्राज्यवाद को निदिंत समझा और स्वशासन की मांग की । जनता को क्रांति का आवाहन किया । अपने विचारों को एक परिष्कृत पत्रकारिता के माध्यम से उन्होंने जनता तक पहुँचाया । इस बात को 1956 ई० में तिलक की जन्म शताब्दी के अवसर पर बोलते हुए पंडित जवाहरलाल नेहरू ने भी स्वीकार किया । उन्होंने कहा कि 'लोकमान्य भारतीय संघर्ष के प्रतीक' थे । वे ऐसे व्यक्ति थे जिन्होंने न सिर्फ एक साहसी सिपाही की हैसियत से काम किया अपितु उनकी भूमिका एक बड़े कप्तान की रहीं। संगठित सरकार के कप्तान की नहीं अपितु असंगठित भारतीय जनता के कप्तान की । उन्होंने भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस की स्थापना में योगदान दिया । साथ ही साथ उन्होंने उसकी बौद्धिक आधारशिला भी रखी । मैं सोचता हूँ कि वे प्रथम महान जननेता थे। उन्होंने तिलक को भारतीय क्रांति का जनक कहकर पुकारा है। ज्यों–ज्यों क्रांति की लहर फैलती गई और सर्वहारा ने राजनीतिक पहल शुरू की । बहिष्कारों और स्वदेशी आंदोलनों की शुरूआत होने लगी । स्थानीय आंदोलन जोर पकड़ते गए तथा उपनिवेशवादी सत्ता भयभीत होने लगी । तिलक को राजद्रोह के गंभीर अपराध का सामना करना पड़ा ।

तिलक ने यह महसूस किया कि सरकार ने संपूर्ण देश को एक विस्तृत कारागाह के रूप में बदल दिया है । सरकार उन्हे जेल भेजकर एक बड़े हॉल से छोटे कमरे में डाल सकती है । उन्होंने बम्बई जाकर एस० एन० परांजपे जो कल के संपादक थे और जिनपर राजद्रोह का मुकदमा चल रहा था, उनकी मदद की। यह मुकदमा इडियन पीनल कोर्ट की धारा 124 ए और 153 ए के आधार पर चलाया गया था, जिसमें ब्रिटिश सरकार के विरूद्ध दुर्भावना फैलाने और उनका प्रचार करने का आरोप था। साथ ही साथ ब्रिटिश भारत के विभिन्न वर्गो के बीच शत्रुता फैलाने का भी आरोप था । उनकी जमानत न देने से तिलक का यह विचार और भी पक्का हो गया कि न्यायिक सारी गतिविधियाँ भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस के नेताओं के खिलापफ एक साजिश है ।

इस प्रकार हम यह देखते है कि अपनी इच्छाओं और आदर्शो के अनुसार जिसे सांचे मे तिलक हिन्दुस्तान को ढ़ालने का कार्य कर रहे थे जिसे वह समयाभाव के कारण पूरा न कर सके, उसी कार्य और विचारों को गाँधी ने मूर्त्त रूप दिया । तिलक उस हिन्दुस्तान के लिए कार्य कर रहे थे जिसमें गरीब से गरीब आदमी भी यह महसूस करे कि यह उसका देश और जिसके निर्माण में उसकी खुद की कारगर आवाज है । ऐसा हिन्दुस्तान, जिसमें सारी जातियाँ आपसी प्रेम एवं भाईचारा के साथ रहेंगी ।

संदर्भ सूची :–

1. एनसाइक्लोपीडिया ऑफ सोशल साईन्स, नोट नम्बर–36, पेज–389
2. एनसाइक्लोपीडिया ब्रिटेनिका, वोल्यूम–27 यूनिवर्सिटी ऑफ शिकागो, 1988, पेज–468 और 469
3. पी० सी० वशिष्ट, आधुनिक राजनीतिक चिंतनधारा, अनु बुक्स प्राइवेट लीमिटेड, मेरठ, पेज–189
4. ए० आर० देसाई– भारतीय राष्ट्रवाद की सामाजिक पृष्ठभूमि, मैकमिलन इंडिया, नई दिल्ली, 1966, पेज–1
5. वहीं
6. डॉ० एस० सी० सिंघल– पाश्चात्य राजनीतिक चिंतन, लक्ष्मी नारायण अग्रवाल आगरा प्रकाशन, पेज–221–22
7. वही, पेज–226
8. वही,
9. बाल गंगाधर तिलक–आर्कटिक होम इन द वेद, पेज–7
10. वहीं
11. एस० ए० बुलपर्ट– लोकमान्य बाल गंगाधर तिलक, पेज–305
12. विवेकानंद भारत से संबंधित विचार–विवेकानंद साहित्य भाग–2
13. विवेकानंद साहित्य भाग–4, पेज–78
14. वहीं, भाग–5, पेज–105
15. लेनिन–इन्फ्रलेमेवल मैटीरियल इन वर्ल्ड पॉलिटिक्स–1908, साभार–रजनी पाम दत्त की पुस्तकः आज का भारत, पेज–122, मैकमिलन प्रकाशन इंडिया

* * * * *